द्वितीय अध्याय

समस्या संबंधित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार

अध्याय –II

समस्या संबंधित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार

2.0 भूमिका :

आधुनिक युग में दो शब्द सबसे अधिक प्रचलित हैं– 'अनुसंधान' और 'विज्ञान'। अनुसंधान और विज्ञान सभ्यता के प्रगति रूपी रथ के दो पहिये हैं जिनसे वह विकास की ओर आगे बढ़ रही है। मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक जिज्ञासु प्राणी है। उसमें किसी भी नई वस्तु या ज्ञान के प्रति एक उत्कण्ठा रही है। अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिये वह इस संसार के रहस्यों को निरन्तर जानने का प्रयास करता रहता है। सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन सामाजिक अनुसंधान के द्वारा ही संभव है।

व्यावहारिक दृष्टि से सारा मानव ज्ञान पुस्तक एवं पुस्तकालयों में प्राप्त किया जा सकता है, अन्य जीवों के अतिरिक्त जो प्रत्येक पीढ़ी में नये सिरे से प्रारम्भ करते हैं। मानव समाज अपने प्राचीन अनुभवों को संग्रहित एवं सुरक्षित रखता है। ज्ञान के अथाह भण्डार में मानव का निरन्तर योगदान सभी क्षेत्रों में उसके विकास का आधार है।

साहित्य का पुनरावलोकन या सैद्धान्ति आधार प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कदम है। प्रत्येक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान में चाहें भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो अथवा सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में हो, साहित्य का सैद्धान्तिक आधार होना एक अनिवार्य और प्रारम्भिक कदम है। क्षेत्रीय अध्ययनों में जहाँ उपलब्ध उपकरणों तथा नवीन स्वनिर्मित उपकरणों का उपयोग तथा प्रदत्त संकलन का कार्य होता है। समस्या से संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन या सैद्धांतिक आधार

Regional Institute of Education LIBRARY

अनुसंधान का प्राथमिक आधार तथा अनुसंधान के गुणात्मक स्तर के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक है।

2.1 संबंधित साहित्य के सैद्धान्तिक आधार का लाभ :

1. ज्ञान के क्षेत्र के विस्तार के लिये आवश्यक है। अनुसंधानकर्ता को यह ज्ञान हो कि ज्ञान की वर्तमान सीमा कहाँ पर है। वर्तमान ज्ञान की जानकारी के पश्चात् ही ज्ञान आगे बढ़ाया जा सकता है।
2. पूर्व साहित्य के सैद्धान्तिक आधार से अनुसंधानकर्ता को अपने अनुसंधान के विधान की रचना के संबंध में अर्न्तदृष्टि प्राप्त हो सकती है।
3. सत्यापन करने के लिये कुछ अनुसंधानों, विधानों, विचारों को नवीन दशाओं में करने की आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत शोधकार्य **''कक्षा आठवीं के विद्यार्थियों का पाठ्यपुस्तकीय तथा संदर्भीय ज्ञान एक–अध्ययन''** विद्यार्थियों के पाठ्यपुस्तकीय तथा संदर्भीय ज्ञान के स्तर एवं ज्ञान की प्रकृति घटकों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा–2005 को केन्द्र में रखकर किया गया है। शोधकर्ता ने प्रस्तुत समस्या से संबंधित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार निम्न रूप से लिया गया है।

2.2 समस्या संबंधित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार :

2.2.1 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 अनुसार –

1. **ज्ञान के संदर्भ में लिखा है –** ''संज्ञान का अर्थ है कर्म व भाषा के माध्यम से स्वयं और दुनिया को समझना। बच्चों की संज्ञानात्मक प्रवृत्ति 'यहाँ' और 'अभी' के बारे में जानने की होती है, वे ठोस अनुभवों पर तर्क और कार्य करते हैं। जैसे–जैसे उनकी भाषायी क्षमता और दूसरों के साथ काम करने के सामर्थ्य का विकास होता

है, उनके कार्यो में अपेक्षाकृत अधिक जटिल विवेचना की संभावनाएँ खुलती जाती हैं जिनमें अमूर्तीकरण, नियोजन व उद्देश्य समाहित होते हैं जो तत्काल दिखाई नहीं देते। इस तरह काल्पनिक विचारों के साथ काम करने तथा संभावनाओं की दुनिया में विवेचन करने की क्षमता बढ़ती जाती है। अतः अवधारणात्मक विकास संबंधों को समृद्ध और प्रगाढ बनाने व नए अर्थो को प्राप्त करनें की एक निरंतर प्रक्रिया है। इसके साथ उन सिद्धांतों का भी विकास होता है जो बच्चे प्राकृतिक व सामाजिक दुनिया के बारे में बनाते है और ये सिद्धांत उन्हें यह बताते हैं कि चीजें जैसी है वैसी क्यों है, कारण व कारण के बीच क्या संबंध है और कार्य व निर्णय लेने के क्या आधार हैं। ज्ञान को हम जानकारी मान बैठते हैं। दूसरों की संगत में सीखना पारस्परिक अंतःक्रिया करने की ही प्रक्रिया है।

2. **ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के संदर्भ से लिखा है–** "ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान लगभग एक समान होते हैं लेकिन उनमें दो भेद भी हैं, जो पाठ्यचर्या की योजना बनाने के लिये बहुत ही प्रासंगिक है प्रथम, सामाजिक विज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करते हैं जिसका आधार तर्क होता है, जबकि विज्ञान 'कारण–प्रभाव' के आधार पर काम करता है। दूसरे, सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्ष बहुधा नैतिका और वांछनीयता के सवाल उठाते हैं जबकि प्राकृतिक घटनाएँ समझी जाती हैं, उन पर नैतिकता के सवाल तभी उठाए जाते हैं जब वे मानव के कार्यव्यवहार में शामिल हो जाती है।

"बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए

सक्षम बनाएँ कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुभव कक्षायी अनुभव आयोजित करें ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल पाऐं। रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में, सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। विद्यार्थी सक्रिय रूप से पूर्व प्रचलित विचारों में उपलब्ध सामग्री/गतिविधियाँ के आधार पर अपने लिए ज्ञान की रचना करते हैं (अनुभव)। विद्यार्थी दी गई गतिविधियों (अनुभव) के माध्यम से बाह्य यथार्थ की मानसिक छवि गढ़ सकते हैं। विचारों की रचना एवं पुनर्रचना उनके विकास के आवश्यक लक्षण है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का एक सामाजिक पहलू यह भी है कि जटिल कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान समूह परिस्थितियों में निहित होता है। हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है। अर्थ निर्माण सीखना है। सीखने की प्रक्रिया में व्यस्त एक बालक या बालिका अपने ज्ञान का सृजन खुद करता/करती है। बच्चों को ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति देना जिनसे वे विद्यालय में सिखाई जाने वाली चीजों का संबंध बाहरी दुनिया स्थापित कर सकें, उन्हें एक ही तरीके से उत्तर रटने ओर देने की बजाए अपने शब्दो में उत्तर देने और अपने अनुभव बताने के लिए प्रोत्साहित करना–ये सभी बच्चों की समझ विकसित करने में छोटे किन्तु बेहद महत्वपूर्ण कदम है।''

''सीखने के वे कार्य जो यह सुनिश्चित करने के लिए रचे गए है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य स्त्रोतों से भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित होगें, इस दर्शन को संप्रेषित करते हैं कि बच्चे खुद ही खोज करके एवं प्रमाण जुटा के सीखते हैं एवं ज्ञान का सृजन करते हैं और अध्यापक या पाठ्यपुस्तक का ज्ञान पर प्रभुत्व नहीं होता है। बच्चे अपने खुद के अनुभवों से, धर एवं

समुदाय के सदस्यों के अनुभवों से, पुस्तकालयों से और विद्यालय के बाहर अन्य स्त्रोतों से ज्ञान तलाश कर सकते हैं। पाठ्यचर्या ऐसी हो जो उसमें क्रमशः विवेक की क्षमता बढ़ाते हुए उसके ज्ञान के आधार को पुष्ट करें, विभिन्न विषयों के माध्यम से दुनिया को समझने का मौका दे। ज्ञान की कल्पना संगठित अनुभव के रूप में की जा सकती है, जो भाषा, विचार–श्रृंखला (या संकल्पना की संरचना) के माध्यम से अर्थबोध पैदा करती है। समय के साथ इन्सान ने अपने लिए स्वयं ही ज्ञान की नयी विधाऐं विकसित की हैं, जिसमें सोचने के ढंग, अनुभव तथा कार्यनिष्पादन और अतिरिक्त ज्ञान निर्माण के आयाम शामिल है। ज्ञान सृजन की प्रक्रियाओं में भाग लेना, अर्थ ढूंढ़ना और मानवीय कर्म में भागीदारी भी बहुत महत्वपूर्ण है। ज्ञान को अगर तैयार माल की श्रेणी में रखा जाए, तो उसको ऐसी सूचना के तौर पर व्यवस्थित करना होगा जिसका बच्चों के दिमाग में स्थानांतरण हो सके। ज्ञान के सृजन एवं पुनः सृजन के लिए अनुभव के आधार, भाषायी क्षमताओं एवं प्राकृतिक संसार और दूसरे लोगों के साथ अंतःक्रिया की ज़रूरत होती है।''

3. **ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के संदर्भ में, विद्यालयों में तथा बाहरी जीवन की प्रक्रिया के संदर्भ में लिखा है–** ''सीखने के लिए सीखना, जो सीखा है उसे छोड़ने की ओर दुबारा सीखने की तत्परता, नयी परिस्थितियों के प्रति लचीले व रचनात्मक तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त करने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया पर जोर डालने की आज की शिक्षा में आवश्यकता है।''

''बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे विद्यालय आज भी सभी

बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। सीखने का आनंद व संतोष के साथ रिश्ता होने की बजाए भय, अनुशासन व तनाव से संबंध हो तो यह सीखने के लिए अहितकारी होता है। आज यह आवश्यक है कि हमारे सभी बच्चे यह महसूस करे कि वे सभी, उनका धर, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्वपूर्ण है। इन्हें अनुभव के ऐसे संसाधनों के रूप में देखा जाए जिन्हें विद्यालय में जाँचा तथा विश्लेषित किया जाना है; उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले, यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है और सभी की ज्ञान, एवं कौशलों तक पहुँच हो और वयस्क समाज उन्हें सबसे अच्छा करने के योग्य माने लेकिन जब ध्यान आनंद से हटकर उपलब्धि पर चला जाए तो प्रशिक्षण ऐसे अनुशासन व अभ्यास की मांग करता है जो तनाव पैदा कर सकता हैं।''

''विषयों के बीच की दीवारें नीची कर दी जाए ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके और किसी चीज़ को समझने से मिलनेवाली खुशी हासिल हो सके। इसके साथ यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता हो, जिनमें स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों के धर और सामुदायिक परिवेश से जीवंत संबंध बनानेवाले स्फूर्तिदायक विद्यालय माहौल को सुनिश्चित किया जा सके।''

4. पाठ्यपुस्तकीय तथा संदर्भीय ज्ञान के संदर्भ में लिखा है–

''समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यार्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वाभाविक क्षमता को विकसित करती है। जिससे विद्यार्थी में अपने आस-पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यो से जुड़ने की क्षमता बढ़ती

हैं। विद्यालय से बाहर हम बच्चों की जिज्ञासा, खोजी व लगातार प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति का आनंद लेते हैं। बच्चे अपने आस-पास की दुनिया से बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। वे खोज बीन करते हैं। प्रतिक्रिया करते हैं, चीजों के साथ कार्य करते हैं, चीजें बनाते हैं, और अर्थ गढ़ते हैं। बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन भी करता है। बालकेन्द्रित शिक्षाशास्त्र का अर्थ है बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। बच्चें का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है। जिसमें ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है परिवेश के साथ अंतः क्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता हैं।''

''हमारे शैक्षिक अभ्यासों के अनेक पहलुओं को लेकर और भी गहरा असंतोष व्याप्त हैंः (क) विद्यालय व्यवस्था में एक विशेष तरह की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग पर एक बाधा की तरह खड़ी हो जाती हैं; (ख) 'सीखना' एक प्रकार से अलग-अलग गतिविधि हो गई हैं, जो बच्चों को अपने ज्ञान को जैविक व जीवन्त तरीके से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती; (ग) विद्यालय इस तरह की विचार पद्धति को प्रचारित करते हैं जो रचनात्मक चिन्तन व अर्न्तदृष्टि को हतोत्साहित करें; (घ) विद्यालयों में सीखने-सिखाने के नाम पर जो दिया जाता है वह नयी जानकारी व ज्ञान रचने की मानवीय सामर्थ्य के महत्वपूर्ण आयाम को अनदेखा कर देता हैं; (ड़) बच्चे का 'भविष्य' अब इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि बच्चे के 'वर्तमान' को अनदेखा किया जा रहा हैं, जो बच्चे, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर हैं।''

''बच्चों की आवाज व अनुभवों को कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्रायः केवल शिक्षक का स्वर ही सुनाई देता हैं। बच्चे केवल अध्यापक के सवालों का जबाव देने के लिए या अध्यापक के शब्दों को दोहराने के लिए ही बोलते हैं। कक्षा में वे शायद ही कभी स्वयं कुछ करके देख पाते हैं। उन्हें पहल करने के अवसर भी नहीं मिलते हैं। बच्चे उसी वातावरण में सीख सकते हैं जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्वपूर्ण माना जा रहा है। हमारे स्कूल आज भी सभी बच्चों को ऐसा महसूस नहीं करवा पाते। पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षा संबंधी तनाव एवं शारीरिक दंण्डो से बच्चों विद्यालयों में डर सा महसूस करता हैं। हमारी शिक्षा आज भी सीमित 'पाठ्योजना' पर आधारित है। जिसका लक्ष्य हमेशा परिमेय 'आचरणों' को हासिल करना होता हैं। इस दृष्टिकोण से बच्चे ऐसे प्राणी माने जाते हैं जिन्हें हम प्रशिक्षित कर सकते हैं या फिर एक कम्प्यूटर के समान जिन्हे हम अपने हिसाब से कार्यबद्ध कर सकते हैं। इसलिए 'परिणामों' पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। विद्यालय में जोर इस बार पर रहता है कि ज्ञान को जानकारी के टुकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया जाए जिससे बच्चे प्रोत्साहित होने के बाद उन्हें सीधे पाठ से याद कर सकें। अंत में यह देखने के लिए बच्चे के मूल्यांकन पर भी बड़ा जोर रहता हैं कि बच्चे ने याद किया की नहीं। जबकि ज़रूरत यह है कि हम बच्चे को हमेशा ज्ञान सृजन में तल्लीन रखने की आवश्यकता को समझे। केवल गणित, विज्ञान, भाषा व समाजविज्ञान जैसे ज्ञानात्मक विषयों के बारे में ही यह सच नहीं है बल्कि मूल्यों, अभिरूचियों और कौशलों के बारे में भी यह बात उतनी ही सटीक हैं।''

"बच्चे जो विद्यालय से बाहर सीखते हैं– उनकी क्षमताएँ, सीखने का सामर्थ्य और ज्ञान जिसे वे विद्यालय लेकर आते हैं वह भी अधिगम की संवृद्धि में बहुत महत्वपूर्ण है। मानव गतिविधियों और व्यवहार का विस्तृत क्षेत्र सामाजिक जीवन एवं संस्कृति को जीवित रखता है। कताई, काष्ठकला, मिट्टी के बर्तन बनाने जैसी शिल्पकलाएँ, किसान और दुकानदारी जैसे पेशों के साथ–साथ विविध प्रकार की प्रदर्शन और दृश्यकलाओं तथा खेलकूद सभी ज्ञान के मूल्यवान रूप है। ये ज्ञान व्यावहारिक प्रकृति के होते हैं, जिनकी पूरी अभिव्यक्ति विद्यालय में नहीं हो पाती। व्यवहारपरक अनुशासनों की ज्ञान मिमांसात्मक संरचनाओं को समझने के लिए काफी अध्ययन और शोध की जरूरत है। यह समझना कि वे किस प्रकार कौशल सीखते–अपनाते हैं और अपने ज्ञान को किस प्रकार से व्यवस्थित करते हैं, यह समाजशास्त्रीय प्रश्न हैं क्योकि परंपरागत व्यवसायों का संबंध जाति, समूह और लिंग से होता हैं। पाठ्यचर्या में उनके महत्व को समझना आवश्यक है, केवल कार्य के रूप में नहीं, बल्कि समान रूप से विविध प्रकार के ज्ञान के रूप में भी। मानव ज्ञान के इस महत्वपूर्ण हिस्से को विद्यालय पाठ्यचर्या में भरपूर स्थान देने की आवश्यकता हैं।

5. **पाठ्य पुस्तकीय ज्ञान को संदर्भीय ज्ञान के साथ जोड़ने के संदर्भ में लिखा है** – "हमारे शैक्षिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में आज गहरी विकृति आ गई है, इसका प्रमाण है यह तथ्य की शिक्षा बच्चों और उनके माँ–बाप के लिये तनाव और बोझ का कारण बन गई है। इस विकृति को दुरस्त करने के लिये पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज ने पाठ्यचर्या निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धान्तों का प्रस्ताव रखा है, (1)

ज्ञान को विद्यालय के बाहरी जीवन से जोड़ना; (2) पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना; (3) पाठ्यचर्चा का इस तरह संवर्धन हो कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाय इसके की पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित बन कर रह जाए; (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना; और (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिंताऐं समाहित हो।''

''बच्चे काफी कुछ सहजता से अपने परिवेश में बड़े होते हुए सीख लेते हैं। वे अपने आस-पास के जीवन व दुनिया पर भी नज़र रखते हैं। जब उनके अनुभवों को कक्षा में लाया जाएगा, तो उनके प्रश्नों, उनकी जिज्ञासाओं से पाठ्यचर्या अधिक समृद्ध और रचनात्मक बनेगी। इन सुधारों से स्वीकृत पाठ्यचर्या के सिद्धातों-'ज्ञात से अज्ञात की ओर', मूर्त से अमूर्त की ओर' और 'स्थानीय से वैश्विक की ओर' को बल मिलेगा। इस उद्देश्य के लिए विद्यालयी शिक्षण के सभी आयामों में विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र को अपनाने की आवश्यकता है। जिनमें शिक्षक शिक्षा भी शामिल है। अगर (क) कक्षा के ज्ञान को बच्चों के जीवन-अनुभव से जोड़ा जाए, (ख) हाशिए के समाजों के बच्चों को जिन्हें काम से जुड़े कौशल का ज्ञान होता हैं, अपने संपन्न साथियों का मान-सम्मान पाने का अवसर मिल सकेगा, और (ग) संचित मानवीय अनुभव, ज्ञान और सिद्धांतों को इस प्रकार संदर्भित किया जा सकेगा। कोई भी विद्यालयी पाठ्यचर्या अलग-अलग न होकर प्रत्येक विषय क्षेत्र में प्रस्तावित

जानकारी के चुनाव का सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों व उद्देश्यों के संदर्भ में होना चाहिए।

"किताबी ज्ञान को दाहेराने की क्षमता के विकास के बजाए पाठ्यचर्या बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज़ ढूंढ़ सकें, अपनी उत्सुकता का पोषण कर सकें, स्वयं करें, सवाल पूछें, जाँचें–परखे और अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सके। सभी बच्चे स्वभाव से ही सीखने के लिए प्रेरित रहते हैं और उनमें सीखने की क्षमता होती है। अर्थ निकालना, अमूर्त सोच की क्षमता विकसित करना, विवेचना व कार्य, अधिगम की प्रक्रिया के सर्वाधिक महत्वूपर्ण पहलू है। बच्चें व्यक्तिगत स्तर पर एवं दूसरों से भी विभिन्न तरीकों से सीखते हैं– अनुभव के माध्यम से, स्वयं चीजें करने व स्वयं बनाने से, प्रयोग करने से, पढ़ने, विमर्श करने, पूछने, सुनने, उस पर सोचने व मनन करने से तथा गतिविधि या लेखन के जरिए अभिव्यक्त करने से। विद्यालय के भीतर व बाहर, दोनों जगहों पर सीखने की प्रकिया चलती है। इन दोनों जगहों में यदि संबंध रहे तो सीखने की प्रकिया होती हैं।

6. स्कूल शिक्षा में पाठ्यक्रम की समस्या के संदर्भ में–

"भारत में हमने परंपरागत रूप से पाठ्यचर्या निर्धारण में विषय आधारित दृष्टिकोण अपनाया है, जो केवल विषयों पर आधारित होता है। यह तरीका ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों में एक 'पुलिन्दे' की तरह प्रस्तुत करता हैं, जिसके साथ विषय क्षेत्रों से जुड़ी योग्यता के परीक्षण के लिए दी जानेवाली परीक्षाओं की विधि भी दी जाती है। इसके साथ ही उस विषय क्षेत्र में दक्षता को जांचने हेतु

अंक भी दिए जाते हैं। इस कारण हमारी शिक्षा व्यवस्था में कई समस्याएँ आ गई है।

प्रथम, ज्ञान के जो स्वरूप पाठ्यपुस्तकों के अंतर्गत नहीं आते या जिनका मूल्यांकन अंकों के आधार पर नहीं हो सकता उनको एक तरफ करके 'अतिरिक्त' या पाठ्यविषयेतर करार दे दिया जाता है जबकि उन्हें पाठ्यचर्या का समेकित अंग होना चाहिए। जैसे खेलकूद, शिल्प, जो कौशल, सौन्दर्यबोध, चतुराई, रचनात्मकता, समूह में काम करने की क्षमता आदि की दृष्टि से बेहद समृद्ध होते हैं, परे छूट जाते हैं।

दूसरें, विषयों का आपस में कोई तालमेल नहीं होता वे बिलकुल अपरिवर्तनीय उपखंड बन जाते हैं इसलिए ज्ञान भी समेकित और जुड़ा हुआ लगने की बजाए खंडित लगता हैं। बच्चे की दुनिया को देखने के दृष्टिकोण की बजाए ये विषय ही ज्ञान के आरंभ बिन्दु बन जाते हैं और विद्यालयीन ज्ञान और बाहरी ज्ञान के बीच एक सीमारेखा खिंच जाती है।

तीसरा, पहले से मौजूद ज्ञान को ज्यादा तरजीह दी जाती है जिससे बच्चे की खुद ज्ञान सृजित करने और इस प्रक्रिया के नए तरीके खोजने की क्षमता नष्ट हो जाती है। सूचना, ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती हे, सूचना को प्राथमिकता मिल जाती हैं, जिससे भारी-भरकम पाठ्यपुस्तकों का निर्माण होता हैं।

चौथी समस्या का संबंध नए विषयों को शामिल करने से हैं। यह एक महत्वपूर्ण ज़रूरत है कि विषय समाज के समकालीन मुददों को संबोधित करें लेकिन इससे एक अनुचित प्रवृत्ति यह बन गई है कि विद्यालयीन पाठ्यचर्या में इन मुददों को संबोधित करने के लिए

नए विषय 'बना' दिए जाते हैं। और साथ ही उनकी पाठ्यपुस्तकें और मुल्यांकन के तरीकें भी बना दिए जाते हैं। नए मुद्दों को विषयों की तरह जोड़ने से पाठ्यचर्या का बोझ और भी बढ़ता है और ज्ञान के अवांछनीय विखंडन को बढ़ावा मिलता है।

"अंततः पांचवीं समस्या पाठ्यचर्या में शामिल करने के लिए ज्ञान के चयन के सिद्धांतों के बारे में है। ये सिद्धांत ठीक से बने ही नहीं है।"

2.2.2 अन्य संबंधित साहित्य :

बच्चों की शिक्षा, ज्ञान तथा आस-पास के परिवेश का महत्व बताते हुए गांधीजी ने कहा कि- बच्चे को रूपांतरित होते सामाजिक परिदृश्य का एक अंग बनाने के लिए बच्चे के आस-पास के पर्यावरण, जिसमें मातृभाषा एवं कार्य भी आते हैं, का एक साधन के रूप में उपयोग किया जाए। उन्होनें ऐसे भारत का सपना देखा था जिसमें प्रत्येक बालक अपनी योग्यता व संभावनाओं की तलाश कर सके और दूसरों के साथ विश्व के पुनर्निर्माण के लिए काम कर सकें, एक ऐसा विश्व जिसमें आज भी राष्ट्रों के बीच समाज के भीतर, तथा मानवता व प्रकृति के बीच संघर्ष बरकरार हैं।

रूसों के अनुसार प्रकृति का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। ज्ञान प्राप्ति के साधन एवं विधियों के विषय में रूसों का स्पष्ट मत है कि बच्चों को कर्मेन्द्रियों द्वारा करके और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा स्वयं के अनुभव से सीखने दो, ज्ञान बाहर से जबरन लादने की वस्तु नहीं, स्वयं करके स्वयं को अनुभव से प्राप्त करने की वस्तु हैं। रूसों द्वारा प्रतिपादित नकारात्मक शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर इन्द्रियों के प्रशिक्षण एवं स्वानुभाव द्वारा सीखने पर अधिक बल दिया गया। इसी आधार पर इन्होनें शिक्षण विधियों

का विकास किया। प्रकृति की ओर लौटो (Back to Nature), स्वयं करके सीखना (Learning by self experience), ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा (Education through senses), शिक्षा में स्वतंत्रता (Freedom in Education) तथा बच्चों की अपनी रूचि, रूझान और योग्यता ऐसे पांच नारे दिये।

गुरूदेव टैगोर ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है– "वास्तविक शिक्षा वह है जो उपयोगी वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति को जानने और उनके उपयोग करने और उनसे वास्तविक जीवन की रक्षा करने में सहायता करती हैं।" उन्होनें इस बात पर बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाए उन्हें जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखकर, स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों द्वारा सिखाया जाए।

डॉ. मॉन्टेसरी लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति पर बल देती थी। ये मस्तिष्क, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान प्राप्त करने का आधार मानती थी, साधन मानती थी। इनके अनुसार किसी भी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति के लिए इन तीनों का संयोग आवश्यक होता है, न केवल मस्तिष्क काम कर सकता हैं, न केवल कर्मेन्द्रियों और न केवल ज्ञानेन्द्रियाँ।

गिजुभाई बधेंका भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान को आवश्यक मानते थे। भौतिक जगत का ज्ञान बाहय इन्द्रियों के माध्यम से किया जा सकता है और आध्यात्मिकता का ज्ञान अन्तःकरण द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं। इन्होनें सर्वप्रथम पुस्तकप्रधान शिक्षण विधियों जैसे की कथन, पुस्तक एवं व्याख्यान प्रणाली का विरोध किया और मॉन्टेसरी, किण्डर गार्टन तथा फ्रोबेल के शिक्षण सिद्धांतों का समर्थन किया।

उपरोक्त संदर्भ साहित्य से पता चलता है कि शोधकर्ता ने वर्तमान शैक्षिक एवं समाजशास्त्रीय समस्या लेकर ज्यादातर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को ही केन्द्र में रखकर अध्ययन किया। विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया, ज्ञान का स्तर, ज्ञान ज्ञान की प्रकृति आदि पहलूओं को लेकर विद्यार्थियों का पाठ्यपुस्तकीय तथा संदर्भीय ज्ञान का अध्ययन किया। वैसे स्थानांतरित तथा अन्य विद्यार्थियों के ज्ञान का स्तर तथा ज्ञान की प्रकृति के बारे में, सीखने की प्रक्रिया तथा पाठ्यपुस्तकीय एवं संदर्भीय ज्ञान का अधिक संशोधन नहीं हुआ हैं। अतः उपयुक्त संबंधित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत शोधकार्य हेतु किया गया है।